IJAER/ Jan-Feb 2023/Volume-12/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

बालश्रम निवारण में मीडिया की भूमिका

डॉ0 गीता
शोध छात्रा,
समाजशास्त्र विभाग
श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला, अमरोहा

सार
प्रस्तुत शोध में बाल श्रम की समस्या को उजागर किया गया है जो आज भारत की ही नहीं बल्कि विश्व के प्रत्येक देश की गंभीर समस्या है। आज विश्व में लगभग 168 मिलियन बच्चे बालश्रम करने को मजबूर हैं। इसके खिलाफ सरकार द्वारा अनेक कानून बनायें गये हैं तथा उनमें संशोधन करके इन बाल मजदूरों को काफी हद तक सुविधा भी प्रदान की गयी है किन्तु फिर भी यह विडम्बना ही हैं कि आज मीडिया के इतना सक्रिय होने के बावजूद बालश्रम को रोका नहीं जा सकता जबकि सरकार द्वारा 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को शिक्षा अनिवार्य की गयी है फिर भी आज बालश्रम के कारण लाखो–करोड़ो बच्चे इस शिक्षा से वंचित हैं क्योंकि उन्हें अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए बालश्रम करना प्रथम अनिवार्यता हैं। किन्तु आज जरूरत है कि मीडिया अपने स्तर से इन बाल मजदूरों के साथ–साथ उनके माँ–बाप एवं नियोक्ताओं के मन में इसके कुप्रभावों को बताने का प्रयास करें ताकि इन बाल मजदूरों का मौह शिक्षा की ओर मौड़ कर एक उचित माहौल तैयार किया जा सके क्योंकि ये बच्चे ही राष्ट्र की बुनियाद हैं। वास्तव में तभी सही अर्थो में हम ''सर्व भवन्तु सुखिन' की सोच को साकार रूप देने में सहयोगी हो सकेंगे।

राष्ट्रीय स्तर पर मीडिया

बालश्रम समस्या के समाधान हेतु तमाम नीतियां एवं कानून बनाये गये, इसके बावजूद हमारे देश में यह समस्या अपना अत्यन्त विकराल रूप धारण करती जा रही है सम्पूर्ण विश्व निःसन्देह नई सहस्राब्दी के दूसरे दशक में प्रवेश कर चुका है। यूनिसेफ द्वारा 2013 जारी की गयी रिपोर्ट के अनुसार आज भी दुनिया में 5–17 वर्ष की आयु के लगभग 168 मिलियन बच्चे मजदूरी करने को विवश है। निःसंदेह यह एक बड़ा दुःख का विषय है और मानवीय मूल्यों की सुरक्षा हेतु स्थापित सरकारों को कानून बनाने के साथ–साथ अपनी नीतियों में भी परिवर्तन करने की जरूरत है। आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों में सुधार करने के साथ ही कानून एवं नियमों की अनुपालना में प्रभावी प्रवर्तन तन्त्र को सहायता करनी होगी। भारत जैसे देश में जहां जनसंख्या के 40 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति घोर दरिद्रता की स्थिति में अपना जीवन–यापन कर रहे हैं, वहां बालश्रम एक बहुत ही जटिल समस्या के रूप में उभरा है। बच्चे इसी दरिद्रता के कारण ही नौकरी करने को विवश हैं और उनकी कमाई के बिना उनके परिवारों का जीवन स्तर और भी गिर सकता है। इनमें अधिकांश बच्चे ऐसे भी हैं, जिनके परिवार हैं ही नहीं, यदि कुछ के हैं भी तो, उन्हें परिवार से किसी सहयोगी आशा ही नहीं है। ऐसी परिस्थिति में काम का विकल्प– बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी या इससे भी अधिक घातक विकल्प अपराध है।

बालश्रम हर दृष्टिकोण से निंदनीय है और येन–केन प्रकारेण इसका उन्मूलन होना चाहिए। सरकार ने इसके लिए कानून कुछ अवश्य बनायें हैं, किन्तु अभी तक यह कानून अपनी उपस्थिति केवल सैद्धान्तिक रूप से ही दिखा पाये हैं, वास्तविकता से अभी काफी दूर दिखायी देते हैं। अब हम बालश्रम कानून प्रक्रिया के इतिहास का अवलोकन करते हैं, तो देखते हैं कि सर्वप्रथम कारखाना अधिनियम वर्ष 1881 में बनाया गया। इस कारखाना अधिनियम के तहत 7 वर्ष तक की आयु वाले किसी भी बाल श्रमिक के काम के लिए 9 घण्टे तक की कार्यावधि का प्रावधान बनाया गया। ब्रिटिश काल में यह कानून मानचेस्टर के कपड़ा उद्योगपतियों के दबाव में आकर ही इसे ब्रिटिश शासकों ने लागू किया था, क्योंकि भारतीय उद्योगति सस्ते बाल श्रमिक का उपयो गन कर सकें। इस कानून का उद्देश्य मूलतः भारतीय कपड़ा उद्योग की लागत बढ़ाना था, ताकि प्रतिस्पर्धा में ब्रिटिश कपड़ा उद्योगपतियों के पीछे रहे। हाँ! यह उल्लेखनीय अवश्य है कि इसका मुख्य लक्ष्य कुछ भी रहा हो, किन्तु बालश्रमिकों के लिए यह श्रमनीति का एक आधार बिन्दु अवश्य बन गयी। यद्यपि इस कानून को अनेक बार संशोधित किया जा चुका है।

ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाये गये बाल–श्रमिकों कानून में 1891 के संशोधन द्वारा उद्योगों में रोजगार हेतु कम से कम आयु 7 वर्ष बढ़ाकर 9 वर्ष की गयी और कार्य करने की अवधि 9 घण्टे से घटाकर 7 घण्टे कर दी। तदुपरान्त इसी कानून का पूर्ण संशोधन किया गया, जिसके तहत यह सुनिश्चित किया गया कि किसी भी बाल श्रमिक को सांयकाल 7 बजे से प्रातः काल 5:30 बजे तक कार्य में नहीं लगाया जायेगा। कुछ खतरनाक औद्योगिक प्रक्रियाओं एवं उद्योगों में बाल श्रमिकों का नियोजन भी वर्जित कर दिया गया। अन्य उद्योगों में नियोजन से पूर्व उम्र एवं स्वस्थ्य का प्रमाण–पत्र होना आवश्यक कर दिया गया। 1926 के संशोधन द्वारा कारखाना

अधिनियम में यह प्रावधान रखा गया कि यदि नियोजक एवं बालकों के माता–पिता एक ही दिन उन्हें दो कारखानों में काम करने हेतु भेजते हों, तो उन्हें दंडित किया जाएगा। इसी कानून में 1934 में व्यापक संशोधन किया गया तथा नियोजन की न्यूनतम उम्र 15 से 15 वर्ष रखी गयी। इसके अतिरिक्त काम के घंटे भी तय किए गये और बाल श्रमिकों से मात्र 5 घण्टे काम लेना निश्चित किया गया। इसके पहले 1926 के संशोधन द्वारा किसी भी कारखाने में नियोजन हेतु न्यूनतम उम्र 14 वर्ष नियत हो गयी थी।

मीडिया कायोगदान

उन्नीस सौ बीस से लेकर उन्नीस सौ चालीस के दशक तक महात्मा गांधी की एक अपनी सोच पूरे देश के मानस को झकझोर देती है और उन्हें अपना सबकुछ निछावर करने के लिए प्रेरित करती थी। बापू की आवाज पर लाखों स्त्री–पुरूष और बच्चे उनके साथ एकजुट होकर निकल पड़ते थे। जिस दौर में टीवी और जनसंचार के दूसरे माध्यम न थे, या आज जितने प्रभावी नहीं थे, उस समय यह सब कैसे हेाता था? उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैले और विविध भाषाओं, बोलियों संस्कृतियों और जातीय भिन्नताओं वाले एक राष्ट्र के साथ बापू किस तरह संवाद करते थे?

इस जटिल सवाल का जवाब सबको तब मिलेगा जब आप गांधी जी की आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' पढ़ेंगे और पाएंगे कि किस तरह गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह जैसे बुनियादी आदर्शो को भारतीय मानस, उपनिषदों और भगवद् गीता से लिया, जान रस्किन, टॉलस्टाय और अन्य महापुरूषों की बातों से सबक लिए, उन्हें आत्मसात किया, उन पर अमल किया और भारतीय समाज में प्रचलित प्रतीकों, मिथकों, पुरा कथाओं और यहां की शैली में उसे लोगों केसामने रखा। यही कारण है कि आज अंध उपभोगवाद और मूल्यों के हास वाले दौर में भी लोगों तक अपनी बात पहुंचने के मामले में बापू को सबसे कुशल माना जाता है।

मीडिया और संचार के विकास से सम्बन्धित किसी भी पैकेज के लिए चार बातें जरूरत हैं– विकास की तरह मीडिया का भी गरीब समर्थक, प्रकृति समर्थक, बच्चों का समर्थक और लैंगिक समानता का समर्थन होना चाहिए। हम अक्सर यह कहते हुए गरीबों से जुड़े मुद्दों को दरकिनार कर देते हैं कि वे नादान हैं, अज्ञानी हैं, उनमें कौशल नहीं है वे अपनी आर्थिक स्थिति को संभाल नहीं सकते। पर यह कहते हुए हम अपनी ही नादानी को प्रदर्शित कर रहे होते हैं। गरीबों के पास अपना देसी ज्ञान, देसी समझ, बुद्धि, अनुभव और कौशल होता है और संसाधन मिलें तो वे अपने सारे मामलों की बहुत होशियारी और ढंग से संभाल सकते हैं, उल्टे हमीं को उनसे सीखने की जरूरत है।

विकासात्मक सूचना संचार की योजना बनाने वालों और लागू करने वाले के मन में यह बात बैठानी होगी कि सरकार और गरीबों के बीच 'माई–बाप' वाला संबंध नहीं है; कि सरकार कोई खैतार नहीं बांटती और न ही गरीब खैरात लेते हैं; कि सरकार की भूमिका सुविधाओं के ऐसे माहौल और अवसर पैदा करने की है जिसमें गरीब और वंचित अपने मानवीय विकास का (सिर्फ मानव संसाधन विकास नहीं) अवसर पाएं और उसे अपनी तार्किक परिणति तक ले जाएं।

बाल मजदूरी समाप्त करने और काम से मुक्त कराए गए बच्चों के पुनर्वास के मामले में मीडिया की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। उसको लोगों को सूचित करने के साथ ही उनके मन में बैठे भ्रमों और भ्रांतियों को दूर करना है। एक सवाल पर संवेदनशीलता पैदा करनी है और इस बारे में व्यक्त किए जा रहे संदेहों को दूर करना है अगर हम एक व्यवस्थित मीडिया और संचार पैकेज तैयार करें जिसमें सामाजिक रूप से प्रासंगिक विषय हों तथा जिसमें इसके केंद्रीय संदेश को प्रसारित करने की विधि हो तो कोई भी इस काम में मीडिया की केन्द्रीय सवाल खड़ा नहीं कर सकता इसमें बाद यह सवाल आता है कि सबसे प्रभावी प्रिंट मीडिया है या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या लोक संचार के माध्यम। इसका जवाब नहीं है कि इन तीनों माध्यमों के साथ ही और भी माध्यमों की जरूरत इस काम में है। प्रिंट मीडिया पढ़े–लिखे और अखबार–पत्रिकाएं खरीद करने वालों के लिए बहुत प्रभावी हैं तो इलेकट्रोनिक मीडिया साक्षर और निरक्षर सभी के लिए। नुक्कड़ नाटक, महाराष्ट्र और दक्षतिया जैसे लोक संवाद के माध्यम से भी बाल मजदूरी की समाप्ति में संदेश पहुंचाने का महत्वपूर्ण उपकरण बन सकते हैं। वर्तमान में सोशल मीडिया प्रचार का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम हैं इसके माध्यम से बाल मजदूरी को रोकने हेतु विज्ञापन आदि माध्यमों से बाल मजदूरी रोकने का प्रयास किया जा सकता है।

अगला सवाल यह है कि इस पैकेज में क्या चीजे होनी चाहिए? क्या इसमें बाल मजदूरी के लिए जिम्मेवार मां–बाप की गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी ओर अर्द्ध–रोजगारी को महत्व दिया जाना चाहिए; बाल श्रम को कौशल के विकास से जुड़ा बताया जाए; या बाल मजदूरी के आयात–निर्यात को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ा बताया जाए? निश्चित रूप से ये काम नहीं करने हैं। इस पैकेज में

बाल मजदूरी को बच्चे के शरीर, मन, दिमाग और कुल विकास पर पड़ने वाले कुप्रभावों को केंद्र में रखा जाना चाहिए। प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और लोक माध्यमों से बाल मजदूरी की समस्या को गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी और अर्द्धरोजगारी से एकदम अलग और तत्काल ध्यान दिए जाने वाली समस्या के तौर पर बताया जाना चाहिए। ये बाकी समस्याएं सदा से रही हैं और इन्हें साथ जोड़ने का मतलब बाल मजदूरी की सारी समस्या को और भी मुश्किल बना देना होगा, जिससे इसके निदान की तरफ बढ़ना ज्यादा दुश्वार लगेगा। अगर संसाधन हुए तो हम गरीबी, निरक्षरता और बेरोजगारी हटाने की बहुआयामी कार्यनीति पर भी काम कर सकते हैं। इन समस्याओं का आकार जैसा है उसमें इन कदमों का असर होने में काफी वक्त लगेगा। चूंकि गरीबी, बेकारी, अशिक्षा को दूर किया जा सकता, इसलिए बाल मजदूरी भी जारी रहे, यह तर्क देना बहुत गलत है। इस पैकेज में इस बात को महत्व दिया जाना चाहिए कि मानव विकास के लिए बालपन सबसे महत्वपूर्ण और नाजुक दौर होता है औश्र इस दौर में बच्चे से जानलेवा काम कराने की जगह उसे पढ़ने, सीखने, खेलने का अवसर दिया जाना चाहिए। इस उम्र में काम का बोझ उसके स्वास्थ्य के लिए तो घातक है ही उसके मानसिक विकास को भी प्रभावित करता है और उसका व्यक्तित्व ढंग से नहीं विकसित हो पाता। इस पूरे काम में मूल विचार यही होना चाहिए कि जिस प्रकार गरीबी के चलते बाल मजदूरी पनपती है उसी प्रकार बाल मजदूरी के चलते सदा दरिद्रता को भी न्यौता दिया जाता है।

इस पैकेज के संबंध में यह भी उचित होगा कि इस मामले में माँ–बाप की राय, नियोक्ता और खुद बाल मजदूरों की राय ली जाए और देखा जाए कि शुरूआती योजना और सोच में क्या जरिया है।

जैसे 5–14 वर्ष की उम्र में अपने बच्चों से स्कूल की जगह काम कर भेजने वाले मां–बाप के बारे में बनी आम धारणा को ही लें। वे ऐसा इस उम्मीद से करते हैं कि उनके बच्चों की कमाई से घर की छोटी आमदनी में कुछ योगदान हो जाएगा। लेकिन न्यूनतम मजदूरी कानून 1948 के अनुसार बच्चों से रोज सिर्फ साढ़े चार घंटे ही काम लिया जा सकता है और उन्हें वयस्क मजदूर की तुलना में 50 फीसदी मजदूरी दी जानी चाहिए।

कल्पनाशील मीडिया अभियान एक ओर तो उन मां–बाप लोगों को यह बात समझा देगा कि उनके बच्चों को स्कूल की जगह काम पर भेजने का उन बच्चों पर क्या दुष्प्रभाव हो रहा है और किस तरह ऐसे बच्चे अंततः सामान्य पढ़े–लिखे वयस्कों की तुलना में कम ही काम कर पाते हैं, क्योंकि उनके शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास में बाधा आती है। यह नियोक्ताओं को यह बताएगा कि उनके छोटे लोभ (वास्तविक या वह भी नकली ही) के चलते किस तरह सभ्य समाज के कायदे–कानून का उल्लंघन हो रहा है और किस तरह लाखों नन्हें बच्चे–बच्चियों का जीवन बर्बाद हो रहा है। यह बताकर उन्हें अपने इस कृत्य के लिए शर्मिंदा बनाया जाना चाहिए।

नियोक्ता वयस्कों की तुलना में यह मानकर बच्चों को काम पर लगाते हैं–

1. वे यूनियन नहीं बनाते।
2. वे आज्ञाकारी होते हैं।
3. वे काम और मजदूरी को लेकर ज्यादा मोल तोल करने की स्थिति में नहीं होते।
4. अपनी नाजुक उमंगलियों से वे वयस्कों की तुलना में ज्यादा और बेहतद काम कर सकते हैं।

ये सभी गलतफहमियां हैं और मीडिया के सभी क्षेत्रों से जब इस बारे में सच्चाई सामने लाई जाएगी तब इनको दूर होने में ज्यादा वक्त नहीं लगेगा। कामकाजी बच्चे वयस्क नहीं है, इसलिए वे यूनियन नहीं बना सकते। यह बात सच तो है, लेकिन यह नियोक्ताओं की घटिया मानसिकता को ही उजागर करता है। बच्चे आज्ञाकारी होते हैं और उनको यूनियन बनाने का अधिकार नहीं है। सिर्फ इन दो कारणों से उनको काम देकर उनका शोषण करना गलत है। फिर इस बात का भी कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है कि बच्चों की नाजुक अंगुलियों का उत्पादकता से रिश्ता है।

हमें एक बहुत ही व्यवस्थित मीडिया कार्ययोजना बनानी चाहिए जिससे पारंपरिक और आधुनिक, दोनों ही तरह के माध्यमों को इस काम में लगाया जा सके। सारा जोर इस बात पर दिया जाना चाहिए कि बच्चों से काम कराने का क्या नुकसान हो रहा है। इसका एहसास एक साथ नियोक्ताओं, निर्माताओं, निर्यातकों, ठेकेदारों, एजेन्टों और बच्चों के मां–बाप को भी कराया जाना चाहिए जोखिम वाले उद्योगों में काम करने वाले बच्चों की बदहाली को सामने रखकर इन सभी लोगों के मन में इस सवाल का संवेदना जगाई जा सकती है।

मीडिया आज जनमानस की स्वतंत्र आवाज के रूप में होकर उभरी है। इसलिए इस क्षेत्र में निवेश बढ़ाकर इसका आधार बढ़ाने की भी आवश्यकता है, और अपने उद्देश्य को पाने के लिए एक–एक कदम आगे बढ़ाए जाने की जरूरत हैं। सबसे पहले तो इसे बात का सही अंदाज लगाना होगा कि योजना बनाने और लागू करने वाले मीडिया की जानकारियों को कितना महत्व देते हैं। ठोस तौर पर कहें तो लक्ष्य सारे उद्योगों, देशों और कामों से बाल मजदूरी को पूरी तरह समाप्त करना होगा, जिस चरणबद्ध ढंग से पहले ज्यादा जोखिम वाले कामों से शुरू करके सबसे कम जोखिम वाले कामों तक ले आना होगा। यह भी देखना होगा कि योजनाएं बनाने और लागू करने के बाद इस पैकेज को डिजाइन करने का काम किया जा सकता है। इसमें यह विश्लेषण करना शामिल हो सकता है कि मां–बाप अपने बच्चों को स्कूल भेजने की जगह क्यों काम पर भेजते हैं। इस सब की राय किस तरह गलत है, इनको कैसे बदला जा सकता है, किस तरह काम का बोझ बच्चों के स्वास्थ्य, मनोबल, मन और व्यक्तित्व को प्रभावित कर रहा है। एक बार पूरा पैकेज तैयार करने के बाद उसका प्रायोगिक परीक्षण किया जा सकता है। फिर यह पैकेज लागू करने के लिए तैयार होगा जिसमें मीडिया की मदद जरूरी होगी। इसके बावजूद इस बात की निरंतर निगरानी और मूल्यांकन की जरूरत होगी कि यह अपने लक्ष्य को पाने की तरफ बढ़ रहा है या नहीं। लक्षित समूहों/या एक छोटे समूह के बीच छोटे अध्ययनों से यह पता किया जा सकता है। अगर इन अध्ययनों को जरूरी लगे तो इस कार्यक्रम में आवश्यक बदलाव भी लाए जा सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. अवाचट अनिल – 'द वार्प एण्ड वेपेट–1' इकोनॉमक एण्ड पोलिटिकल वीकली, खण्ड–22, सं0 34, 20 अगस्त, 1988
2. अवस्थी, दिलीप– 'ग्लास इण्डस्ट्रीः कटिंग कार्नर्स', इण्डिया टुडे, 31 दिसम्बर, 1986
3. आमोद कंठ एवं आर0एम0 वर्मा– ग्नेगलेक्टड चाइल्स (1993), प्रयास नई दिल्ली।
4. कुमार, एस0– जेंडर इसूज एण्ड क्वालिटी ऑफ वर्क लाइफ (लेख), लेबर एण्ड डेवलपमेन्ट, खण्ड–1, सं0 1, जु0दि0 1995
5. कोठारी, एस0– 'एक्सब्लोयटिंग' द यंग', इण्डिया टुडे, 15 जनवरी, 1983
6. कपाडिया, कामिनी आर0 एवं उषा नायडू– 'चाइल्ड लेबर एण्ड हेल्थः प्राब्लम्स एण्ड प्रास्पेक्ट्स', टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुम्बई (1985)
7. कोठारी, एस0– देयर इज ब्लड इन दीज मैचस्टिक्सः चाइल्ड लेबर इन शिवकाशी', ई0पी0डब्लू खण्ड 18, सं0 27 जुलाई 1983
8. कुलश्रेष्ठ, जे0सी0, एस0के0 शर्मा– चाइल्ड लेबर इन मुरादाबाद मेटरवेयर इण्डस्ट्री, द इकोनामिक टाइम्स, 19 अक्टूबर, 1980
9. यूनिसेफ– 'एन एनालिसिस आफ द सिचुएशन ऑफ चिल्ड्रेन इन इण्डिया' (1994) नई दिल्ली
10. यूनिसेफ, चाइल्ड लेबर रिपोर्ट, 2013
11. डॉ0 इन्दु शर्मा, बाल–श्रमः मानव अधिकारों पर प्रहार (जनपद बुलन्दशहर के विशेष संदर्भ में), अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, 2007